भारत में लोकतंत्र और राजनीतिक दल : चिन्तन के नूतन आयाम

डॉ. सुनीता त्रिपाठी

प्राध्यापक - राजनीति विज्ञान

शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर, उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)

सारांश -

राजनीतिक दल लोकतंत्र की आधारशिला है। बिना राजनीतिक दल के हम लोकतंत्र की कल्पना भी नहीं कर सकते। जिन देशों में राजनीतिक दलों को काम करने की स्वतंत्रता नहीं रहती, वहाँ के नागरिकों को स्वतंत्रता नहीं मिलती। लोकतंत्र ऐसी शासन-पद्धति है जिसका शासन जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा होता है। राजनीति दल प्रतिनिधियों के निर्वाचन में मुख्य रूप से भाग लेते हैं। लोकतंत्र को दलीय शासन भी कहा जाता है। राजनीतिक दल ही लोकतंत्रीय शासन को व्यावहारिक रूप प्रदान करते हैं। जनता के मस्तिष्क को राजनीतिक भोजन देना राजनीतिक दल का ही कार्य ही शासन को बहुमत के अनुकूल बनाने का भी महत्वपूर्ण कार्य करते हैं।

मुख्य शब्द - लोकतंत्र, राजनीतिक-दल।

किसी भी देश में सफल लोकतंत्र के लिये राजनीतिक दलों का होना आवश्यक है। भारतीय लोकतंत्र में भी राजनीतिक दलों का महत्वपूर्ण स्थान है। राजनीतिक दलों को ''लोकतंत्र का प्राण'' कहा जाता है। जनता के प्रतिनिधियों का निर्वाचन राजनीतिक दलों के माध्यम से ही संभव है। भारत में बहुदलीय पद्धति अपनायी गयी हैं। यहाँ मान्यता प्राप्त राष्ट्रीय दलों की संख्या 6 और राज्यस्तरीय दलों की संख्या 48 है। इसके अतिरिक्त अनेक अमान्य पंजीकृत दल हैं। प्रत्येक राजनीतिक दल के अपने-अपने कार्यक्रम होते हैं। निर्वाचन के समय वे अपना घोषणा-पत्र भी जारी करते हैं। जिस दल को बहुमत मिलता है। उसके नेतृत्व में ही सरकार का गठन होता है।[1]

राजनीतिक दल लोकतंत्र में राजनीतिक शिक्षा के मुख्य साधन हैं। राजनीतिक दलों के नेता जनता में अपने दल के सिद्धांतों एवं कार्यक्रम का प्रचार-प्रसार कर जनता के राजनीतिक प्रशिक्षण में सहायता प्रदान करते हैं। लोकतंत्र के लिये राजनीतिक दल वही कार्य करते हैं जो शरीर के लिये फेफड़ा करता है।[2] लोकतंत्र के अन्तर्गत शासन का संचालन जनता के प्रतिनिधि करते हैं। प्रतिनिधियों के निर्वाचन में राजनीतिक दल सक्रिय रूप से भाग लेते हैं। लोकतंत्र का आधार जनमत होता है। जनमत के निर्माण और अभिव्यक्ति में भी

राजनीतिक दलों का महत्वपूर्ण स्थान है। वे सभा, संगठन, पत्र, मंच, भाषण आदि द्वारा जनमत का निर्माण और प्रकाशन करते हैं। निर्वाचन के समय राजनीतिक दल राज्य के नागरिकों को राजनीतिक साहित्य प्रदान करते हैं, उन्हें अपने राजनीतिक कर्तव्यों का बोध कराते हैं तथा शासन की आलोचना कर सरकार को निरंकुश बनने से रोकते हैं। स्पष्ट है कि लोकतंत्र की रक्षा का उत्तरदायित्व राजनीतिक दलों पर ही है। कहा भी जाता है कि "दल नहीं तो लोकतंत्र नहीं"।[3] लोकतंत्र की सफलता के लिये सुव्यवस्थित राजनीतिक दलों का होना अनिवार्य है। भारत में इनका आज अभाव हो गया है। एक समय था जब कांग्रेस पार्टी मजबूत, सुव्यवस्थित तथा सुसंगठित राजनीतिक दल थी। लेकिन उसका भी धुवीकरण हुआ और वह टूटी तथा अनेक खण्डों में बिखरती चली गयी। जिन उम्मीदों से जनता पार्टी की स्थापना हुई थी। उनके अनुकूल कार्य करने में यह असफल ही रहा। चौधरी चरण सिंह के नेतृत्व में लोकदल की स्थापना जनता दल से निकले सदस्यों द्वारा ही की गयी। जहाँ तक अन्य राजनीतिक दलों का प्रश्न है, उनकी स्थिति भी सोचनीय है। ऐसी स्थिति में भारत में हम सफल लोकतंत्र की उम्मीद नहीं कर सकते, शंका होती है कि क्या एक ईमानदार .ानाशाह ही भारत में जनतंत्र की रक्षा कर सकता है।

भारत के लोगों के लोकतंत्र के अनुकूल नैतिक गुणों का विकास नहीं हो पाया है। यहाँ के राजनेताओं और राजनीतिक दलों में नैतिक आदर्शों का अभाव है। जनता के प्रतिनिधि शासन-भार सँभालते ही जनता का हित भूल जाते हैं और अपने राजनीतिक स्वार्थ की पूर्ति में लग जाते हैं। जनमत के माध्यम से ही लोकतंत्र की रक्षा हो सकती है। भारत में स्वस्थ जनमत नहीं है। यहाँ के जनमत को हम "भेड़ियाधसान"[4] की संज्ञा दे सकते हैं। यहां का जनमत प्रतिक्रिया में बौखलाता है और बिना सोचे-समझे बड़ी-से-बड़ी भूल भी कर सकता है।

राजनीतिक दलों के जनविरोधी चरित्र धीरे-धीरे सामने आते जा रहे हैं। बड़ी से बड़ी योजनाएँ भी संदिग्ध चरित्र के ठेकेदारों के हाथ में चली जाती है और राष्ट्रीय संपत्ति की बर्बादी होती है। किन्तु, यदि भारत का राष्ट्रीय चरित्र सचमुच सुधर जाये तो भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश बन सकता है। 1947 से अब तक इस दिशा में काफी प्रयास हुए हैं, जिन्हें हम निम्नलिखित रूप में स्पष्ट कर सकते हैं- 1. शिक्षा का प्रचार तीव्र गति से हो रहा है। 2. आर्थिक तथा सामाजिक विषमताओं का उन्मूलन किया जा रहा है। इसके लिये राज्य सरकारें कुछ आवश्यक कानून भी बना रही है। जमींदारी प्रथा का उन्मूलन इस दिशा में एक प्रयास है। 3. भूमि की जोत की सीमा निर्धारित की जा रही है। शहरी संपत्ति की सीमा पर भी नियंत्रण लगाने के प्रयास हो रहे हैं। आर्थिक समानता के नाम पर संविधान में अनेक संशोधन किये जा रहे हैं। 4. बैंकों तथा उद्योगों का राष्ट्रीयकरण लोकतंत्र की सफलता में आवश्यक कदम है। 5. अल्प संख्यकों के हितों की रक्षा के लिये लोकतंत्र को काफी सक्रिय बनाने के लिये पूर्ण व्यवस्था की गयी है। 6. वर्ग विहीन समाज की स्थापना के लिये अंतराजातीय विवाहों को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। 7. समाचार पत्रों को स्वतंत्र और निष्पक्ष बनाये रखने के लिये सरकार ने प्रतिबंधों को समाप्त कर दिया है और विरोधी राजनीतिक दलों को भी चुनावों के दौरान आकाशवाणी के प्रयोग की सुविधा प्रदान कर दी गयी है।

ISSN 2395-051X

भारत लोकतंत्र के प्रयोग में आगे बढ़ रहा है। महात्मा गाँधी तथा पंडित नेहरू ने भारत को 'प्रजातंत्र की भूमि'[5] कहा है। किन्तु लोकतंत्र का मूल्यांकन इनके गुण-अवगुण के आधार पर होता है। प्लेटो, अरस्तू आदि यूनानी दार्शनिकों ने लोकतंत्र को सरकार का विकृत रूप बताया है। कुछ लोगों ने इसे भीड़तंत्र कहा है, तो कुछ लोगों ने इसे 'बेवफूकों का शासन' बताया है।

दलविहीन लोकतंत्र सैद्धान्तिक दृष्टि से भले ही सुन्दर, आकर्षक एवं आदर्शमय हो, लेकिन व्यवहारिक दृष्टिकोण से इसमें बहुत ही त्रुटियाँ हैं जिनके चलते इसके सिद्धांतों को हम क्रियान्वित नहीं कर सकते। दलविहीन लोकतंत्र सर्वोदयी समाज की मृगतृष्णा है जो लालच में अपने आप में समाप्त हो जाती है। चूँकि मार्च, 1977 ई. के बाद जयप्रकाश नारायण का भारतीय राजनीति में बोलवाला था, इसलिये सर्वोदयी समाज का यह दिवास्वप्न अन्य राजनीतिशास्त्री भी देखने लगे। दलविहीन लोकतंत्र तभी साकार हो सकता है, जब किसी देश का चारित्रिक और नैतिक विकास होगा और उस देश में कोई अभावग्रस्त नहीं रह पायेगा। तब भारत जैसे देश में दलविहीन लोकतंत्र के उज्जवल भविष्य की कल्पना साकार हो सकेगी।[6]

राजनीतिक दलों के लिये व्यवहार संहिता का होना आवश्यक है क्योंकि भारत एक बड़ा लोकतांत्रिक देश है। शांतिपूर्ण चुनाव लोकतंत्र का मूलाधार है। चुनावों के कारण उत्तेजक गहमागहमी के वातावरण में यह सुनिश्चित करने का उत्तरदायित्व सभी राजनीतिक दलों के नेताओं पर है कि चुनाव शांतिपूर्ण हो। किसी भी राजनीतिक दल को ऐसा कुछ नहीं करना चाहिए जिससे संदेह, कटुता और विश्वास का वातावरण बने। चुनावों में हिंसा, जोर-जबरदस्ती के लिये कोई स्थान नहीं है। यह भी सत्य है कि चुनावों की अवधि में हिंसा की छिटपुट घटनाएँ होती है। मतदान केन्द्रों पर जबरन कब्जा किया जाता है, जाली वोट डाले जाते हैं। मतदाताओं को डराया-थमकाया जाता है और मतदान करने से रोका जाता है। इसके लिये आवश्यक है कि चुनावों की अवधि में राजनीतिक दलों तथा उनके उम्मीदवारों और कार्यकर्ताओं को नियंत्रित और अनुशासित बनाये रखा जाये। स्वतंत्र, निष्पक्ष और शांतिपूर्ण चुनाव समय की माँग बन गयी है। इस कारण से ही राजनीतिक दलों के लिये व्यवहार संहिता की आवश्यकता पड़ती है।[7]

सामान्य निर्वाचन के समय निर्वाचन आयोग विभिन्न राजनीतिक दलों की सहमति से व्यवहार संहिता निर्मित करता है। व्यवहार संहिता का उद्देश्य सत्ता का दुरूपयोग रोकना एवं सभी दलों को चुनाव-प्रचार का समान अवसर प्रदान करना है। इस संहिता को कानूनी मान्यता प्राप्त नहीं है, तथापि यह अपेक्षा की जाती है कि सभी राजनीतिक दल इसका पालन करेगें। दसवीं लोकसभा चुनाव के पूर्व भी विभिन्न राजनीतिक दलों की सहमति से व्यवहार संहिता का निर्माण किया गया जिसकी मुख्य बातें निम्नलिखित हैं- 1. काई भी राजनीतिक दल या उम्मीदवार चुनाव अभियान की अवधि में ऐसा कुछ कर या कह नहीं सकता जिससे देश में विभिन्न समुदायों के बीच मतभेद बढ़ें या नफरत और तनाव पैदा हों। साथ ही, कोई उम्मीदवार या राजनीतिक दल चुनाव प्रचार की अवधि में किसी धर्मस्थल का उपयोग नहीं कर सकता। 2. यदि एक राजनीतिक दल दूसरे राजनीतिक दल की आलोचना करता है तो यह आलोचना राजनीतिक दलों की नीतियों, कार्यक्रम की घोषणा

और लोकसभा के गठन की अवधि के बीच मंत्री तथा अन्य अधिकारी न तो किसी प्रकार के वित्तीय अनुदानों की घोषणा कर सकते हैं, न ही ऐसी कोई उम्मीद दिला सकते हैं। इस अवधि में मंत्रीगण किसी योजना या परियोजना का शिलान्यास नहीं कर सकते। वे सड़कों और पेयजल की सुविधाओं का निर्माण करने के वायदे भी नहीं कर सकते। 3. इस बीच मंत्रियों को सरकारी और अर्द्धसरकारी प्रतिष्ठानों में तदर्थ नियुक्तियाँ नहीं करनी है। मंत्रीगण अपने सरकारी दौरे और चुनाव-प्रचार एक साथ नहीं कर सकते। चुनाव-प्रचार के सिलसिले में सरकारी तंत्र या अधिकारियों का उपयोग नहीं कर सकते हैं। 4. सरकारी परिवहन जिसमें सरकारी विभाग, वाहन, मशीनरी और अधिकारी भी सम्मिलित है। उनका सत्तारूढ़ दल को लाभ पहुँचाने में प्रयोग नहीं किया जा सकता। इस सम्बन्ध में प्रधानमंत्री को सुरक्षा की दृष्टि से सरकारी विभाग के उपयोग की अनुमति दी जाती है। 5. डाक-बँगलों पर किसी राजनीतिक दल का एकाधिकार नहीं हो सकता। 6. सरकारी खर्चे पर विज्ञापन और सरकारी संचार के साधनों से पक्षपातपूर्ण प्रचार भी नहीं किया जा सकता। 7. चुनावों की घोषणा होने के बाद चुनाव से सम्बद्ध अधिक.रियों का स्थानान्तरण नहीं किया जा सकता।[8]

लोकतंत्र की सफलता की आवश्यक शर्तों में एक शर्त यह भी है कि संगठित विपक्षी दल अवश्य रहे। भारत का यह दुर्भाग्य रहा है कि ब्रिटेन और अमेरिका की तरह ऐसी कोई विरोधी दल नहीं है। 1977 ई. के चुनाव के अवसर पर पहली बार विपक्ष ने जनता पार्टी के रूप में पनपकर सत्ता प्राप्त की। कालांतर में इसने भी अपने को एक चुनावी गठबंधन सिद्ध कर दिया और बिखरकर पुनः कई दलों में विभक्त हो गया। 1988-89 में पुनः विपक्षी दल को एक होने का अवसर मिला और कई दलों के विलयन के बाद जनता दल का गठन हुआ। 1989 ई. में 141 जगहों पर सफलता मिली। इसने अन्य दलों के सहयोग से केन्द्र में सरकार का गठन किया। परन्तु बाद में निराशा हाथ लगी और जनता दल को बिखरते देर नहीं लगी। अन्य दलों के सहयोग की बात तो दूर रही जनता दल ही तीन खण्डों में विभाजित हो गया- राष्ट्रीय जनता दल, (यू) तथा जनता दल (सेकुलर) 1996 ई. के चुनाव के बाद लगातार लोकसभा के तीनों चुनावों में भारतीय जनता पार्टी एक सशक्त दल के रूप में उभरकर आई।[9]

लोकतंत्र में विपक्षी दल के कार्य भी सरकार से कम महत्वपूर्ण नहीं होते। चुनाव के बाद जब कोई राजनीति दल सत्ता में आ जाता है तब अगले चुनाव तक वह जनता के नियंत्रण से मुक्त हो जाता है। दो चुनावों के बीच सत्तारूढ़ दल पर अंकुश रखने की आवश्यकता पड़ती है। इस आवश्यकता की पूर्ति विपक्ष द्वारा ही संभव है। यदि लोकतंत्र में सत्तारूढ़ दल पर उचित नियंत्रण नहीं रखा जाये तो उसके तानाशाह बन जाने का भय बना रहता है। विपक्ष के सदस्य ही उसकी तानाशाही प्रवृत्ति पर अंकुश लगाये रख सकते हैं। सरकार की आलोचना कर सरकार निर्णय के विरूद्ध आन्दोलन एवं प्रदर्शन कर, मंत्रियों से प्रश्न पूंछकर, सदन में कार्य स्थगन प्रस्ताव लाकर तथा आवश्यकता पड़ने पर सरकार के विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव लाकर विपक्ष सरकार को नियंत्रित करते रहते हैं। कानून निर्माण में भी विपक्ष की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। कानून बनाने से पूर्ण विधायिका में विधेयकों को कई स्तरों से गुजरना पड़ता है। विधेयकों की भी विपक्षी दलों द्वारा आलोचना की

जाती है। उसके उद्देश्यों को चुनौती दी जाती है और आवश्यकता पड़ने पर विपक्षी दलों द्वारा उसमें संशोधन के प्रस्ताव भी प्रस्तुत किये जाते हैं। बजट पारित होने के समय भी विपक्षी दल के सदस्य सरकार की जमकर आलोचना करते है और बजट की कटौती का प्रस्ताव पेश कर सकते हैं।

विपक्षी दलों की आलोचना तथा नियंत्रण के अन्य साधनों के प्रयोग से सत्तारूढ़ दल सजग रहता है। उसे यह सोचने के लिये बाध्य होना पड़ता है कि उसके द्वारा कोई ऐसे कदम नहीं उठाये जायं जिसका लाभ उठाकर विपक्ष जनता को अपने पक्ष में कर लें। ऐसा होने पर उसे चुनाव में असफलता हाथ लग सकती है।[10]

इस प्रकार किसी भी लोकतंत्रात्मक शासन व्यवस्था में राजनीतिक दल प्राणवायु की तरह कार्य करते हैं। भारतीय लोकतंत्र के पिछले 66 वर्षों के अनुभवों को सामने रखकर राजनीतिक दलों की भूमिका पर विचार किया जाना चाहिए। राजनीतिक दलों के अन्दर बढ़ते भ्रष्टाचार, जातिवाद, सांप्रदायिकता की प्रवृत्ति को समाप्त करते हुए राष्ट्रहित, व्यापक जनहित व व्यापक लोकतांत्रिक आधारों पर राजनीतिक दल का गठन समय की मांग है। दलों के अन्दर व बाहर लोकतंत्र की स्थापना के माध्यम से ही इसका असली रूप निखर सकता है।

सन्दर्भ -

1. कश्यप, डॉ. सुभाष, लोकतंत्र का इतिहास हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण 1998
2. शुक्ल, वीरेन्द्र, हाईस्कूल नागरिक शास्त्र, भारती भवन, पटना, 2007
3. वही
4. सिंहल, डॉ. एस.सी., भारतीय शासन एवं राजनीति, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन साहित्य भवन, आगरा उ.प्र.
5. सिंह, वीरकेश्वर प्रसाद, राजनीति शास्त्र, भारती भवन, कदम कुआं, पटना 1995
6. वही
7. सूद, ज्योति प्रसाद, आधुनिक विचारों का इतिहास, प्रकाशक क्रान्ति नाथ गुप्ता के नाथ एण्ड कम्पनी, मेरठ
8. चक्रवर्ती, निखिल, लोकतंत्र की भूमिका, लेखक डेविड वीथम, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, दिल्ली 1997
9. जोहरी, जे.सी., तुलनात्मक राजनीति स्टलिंग पब्लिशर्स प्रा.लि., नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण
10. तारकुण्डे, एम.वी., नवमानववाद लोकतंत्र का दर्शन, वाग्देवी प्रकाशन, राजस्थान 2006